[Conference- Innovation in Music & Dance :January,2015] ISSN- 2350-0530(O) 2394-3629(P)
DOI: https://doi.org/10.29121/granthaalayah.v3.i1SE.2015.3423

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

बदलती तस्वीर कथक नृत्य की

डॉ. मोनिका सिंह
व्याख्याता
डाइट खैरागढ़ (छ.ग.)

जो कल था, वह आज पुराना हो गया और जो कल आनेवाला है वह भी कुछ ही दिनों से अतीत की गाथा बनकर रह जाता है। समय जिस गति से आगे बढ़ रहा है, उसके साथ परिवर्तन की लहर भी उतनी ही गति से प्रवहमान है।

वर्तमान समय में नृत्यकला का क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं है। इस क्षेत्र में परिवर्तन और नवाचार ने इसे कई रूपों में प्रदर्शित किया है। प्राचीनकाल से विद्यमान कत्थक नृत्य धर्म–अध्यात्म से परिपूर्ण नृत्य शैली थी। मंदिरों में भजन–कीर्तन के समय कथावाचकों के द्वारा अभिनय युक्त कथा कहने से कत्थक नृत्य की उत्पत्ति मानी जाती है।

कथावाचन से कत्थक नृत्य शैली के रूप में परिवर्तन किस तरह हुआ है इसका प्रामाणिक इतिहास मिल पाना सहज नहीं है परंतु यह अवश्य सत्य है कि कत्थक नृत्य शैली के रूप में नृत्य में कथा तत्वों की प्रधानता रहती है जिसके कारण इसे कथावाचन शैली से जनित मानने में कोई असहजता नहीं है।

कत्थक शैली में विषयवस्तु परंपरागत भागवत कथा रामक था आदि पर आधारित थी पर जब वह मुगल दरबार पहुँची तो इसके स्वरूप में परिवर्तन हुआ। मुगल शासक कृष्ण से अनभिज्ञ थे इसलिये उन्होने उसे नायक (हीरों) के रूप में स्वीकार किया और राधा बन गयी साकी। राधा कृष्ण के प्रेम प्रसंग पर आधारित नृत्य उनके लिये मनोरंजन का उपायम बन गयी। साकी (नायिका) का कार्य नवाबों को प्रसन्न करना था क्योंकि यदि नवाब प्रसन्न होंगे तो उपहार की बौछार हो जाएगी लेकिन यदि वे नाखुश हुए तो कोड़ो की मार मिलेगी। प्राणभय के कारण नृत्यकार भी नवाबों को प्रसन्न करने का ही प्रयास करने लगे। आध्यात्मिकता से परिपूर्ण नृत्य अब चमत्कारिक रूप धारण करने लगी। मंदिर से महफिल, राधा से शाकी, कृष्ण की जगह बादशाह, आगमन से आयद आदि अनेक परिवर्तन की राह चलकर कत्थक नृत्य का रूप बदला।

यद्यपि यह बदलता रूप कत्थक नृत्य के लिये नवीन सृजन की सीढ़ी भी बना। धर्म आत्यात्म से श्रृंगार प्रधान विषय वस्तुओं का समावेश हुआ। प्रस्तुति की जगह अब अदा ने ले ली। बड़े–बड़े परन, डुमरी, गजल का दौर आया। नवीन रचनाओं ने इसके अर्थ भाव का विस्तारित किया।

परंतु जितना प्रभाव कत्थक नृत्य पर मुस्लिम शासकों का पड़ा उससे भी अधिक मुस्लिम शासक इस नृत्य शैली से प्रभावित हुए। तभी तो नवाब वाजिद अली शाह स्वयं कृष्ण बनते और अपनी बेगमों को गोपियां बनाकर नृत्य करते थे। बोल–बंदिशों की रचना ने कत्थक नृत्यकारों को चुनौती भी दी और प्रोत्साहन भी दिया। एक से एक परनों, गजलों की रचना हुई जिनका मुख्यभाव नायक–नायिका के प्रेम–प्रसंग पर आधारित होते थे। इसीकारण भावों की प्रधानता में जो विशेष अंतर आया वह था आध्यात्म से श्रृंगार।

जो अध्यात्मिक भाव राधा–कृष्ण की प्रस्तुति में दिखाई देते है वही श्रृंगारिक भाव अब नायक–नायिका (साकी) की प्रस्तुति में दिखने लगा। इन दोनों विषय वस्तुओं ने ही कत्थक नृत्य की दो शैलियों को जनित किया। एक शैली हिन्दू सभ्यता और दूसरी शैली मुस्लिम सभ्यता का परिचायक बनी।

जयपुर और लखनऊ घराने की शैलियां इन्ही दो विषय वस्तुओं पर आधारित है। यह परिवर्तन भी कत्थक नृत्य के इतिहास का अविस्मरणीय पहलू है जिसने दो घरानों का सूत्रपात किया। दोनों घरानों ने कत्थक नृत्य शैली को विश्व में नयी पहचान और प्रतिष्ठा दी।

स्वाभाविक है कि जब दो धाराये अलग–अलग दिशा में प्रवाहित होने लगी हो तो इनके विषय वस्तु आचार–व्यवहार, वेशभूषा सभी में परिवर्तन होने लगे।

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

जयपुर घराने में शिव तांडव, शिव परन आदि तांडव अंगों की बहुलता वाले बोलों की रचना हुई तथा लखनऊ घराने में थार, आमद, सलामी एवं नजाकत अंगों से परिपूर्ण वास्य विधियां अविष्कृत हुई। पेरों की जौरदार थाप से जयपुर घराने का उद्घोष होता है ज्बकि पैरो की कोमल थाप लखनऊ घराने की पहचान है। हर अंग हर विकास में नाजुक ख्याली के समावेश ने लखनऊ को प्रतिष्ठित किया जबकि पौरूसत्य युक्त नृत्य जयपुर घराने की राजपूताना सभ्यता को चिन्हित करने लगा।

दोनों घटानों का अंतर उनकी वेशभूषा में भी दिखाई देता है। जयपुर घराने की नायिका लहंगा, ब्जाऊज और लखनऊ घराने की नायिका ''पेषवाष'' धारण करने लगी। यह परिवर्तन का वह समय था जब कि भारत देश स्वतंत्रता के लिये संधर्षरत था। स्वतंत्रता के पश्चात् इस नृत्य में और भी परिवर्तन हुए जो आज भी अनवरत जारी है।

गुरू–शिष्य परंपरा के निर्वहन हेतु शासन ने अध्ययन शालाओं की नींव रखी। जिसमें विद्यार्थियों को नृत्य–संगीत की तालीम दी जाने लगी। इन शालाओं में अध्यापन परंपरागत शिक्षण प्रणाली के अनुरूप हुआ। जिसके कारण एक नियमित काल चक्र में नृत्य की शिक्षा दी जाने लगी। जिसके कारण कुछ विद्यार्थी इस कला में दक्ष कलाकार बने तो कई ने केवल डिग्री हासिल कर इति श्री कर ली।

यद्यपि गुरू–शिष्य परंपरा कहीं–कहीं पर जीवंत और पर कहीं पर मृतप्राय सिद्ध होने लगी। परंतु सकारात्मक पहलू यह भी था कि इन केन्द्रो से कई ऐसे कलाकार हुए जिन्होनें इस नृत्य का वैभव सात समंदर पार विदेशों में किया। कृष्ण कुमार, बिरजू महाराज, ममता शंकर, उमा शर्मा, सितारादेवी आदि अनेक ऐसे कलाकार है जिन्होंने स्वयं एवं उनके विद्यार्थियों ने कत्थक नृत्य को विश्व में प्रतिष्ठित किया। विदेशों में आज भी कत्थक नृत्य के लोकप्रिय होने का श्रेय इन्ही कलाकारों को है। कलाकारों का यह कार्य केवल जीविकोपार्जन के लिये नहीं था। वरन यह प्रतिष्ठा एवं समर्पण से जुड़ा हुआ विषय है जिसके कारण आज विदेशों में इस नृत्यकला के इतने अधिक विद्यार्थी है।

कत्थक नृत्य में वेशभूषा के दो रूपों की चर्चा पूर्व में की गयी हैं जिसके रूप में और भी परिवर्तन आए है। आजकल हर नृत्यकार अपनी सहजता और सुलभता को दृष्टिगत रख इसमें परिवर्तन करने के लिये स्वतंत्र है। इसलिये इस नृत्य शैली की वेषभूषा भी बदल गये। इस वस्त्राभूषण पर स्थानीय परिवेश एवं भौगोलिक दशा का भी प्रभाव पड़ा। किसी ने राजस्थानी लोकनृत्य की वेषभूषा पहनकर कत्थक नृत्य की प्रस्तुति दी है, तो किसी ने परपंरागत साड़ी और लहंगा चोली में। नृत्यकारों ने पेशवाज के रूप में भी बदलाव किये। पेशवाज का फ्राक अब और लंबा होकर लहंगानुमा हो गया है। जाकिट का चलन कभी–कभी दिखाई देता है। टोपी सामान्य तथा नृत्यांगनाए नहीं पहनती है यद्यपि 60–70 के दशक की फिल्मों में पेशावाज अपने संपूर्ण रूप में दिखती है। परंतु मंचीय प्रदर्शन में पेशावाज का रूप बदल गया है और अब पहले की तरह बाध्य भी नही रही। मसलन नृत्यांगनाये पेशवाज (घेरादारफ्राक, चूढीदार जाकिट) पहनकर माथे बिंदी लगाकर भजन, वंदना भी प्रस्तुत कर लेती है जब कि पहले ऐसा नहीं था, क्योंकि पेशवाज पूर्णतः मुगल कालीन वेश था तथा नृत्यांगनाये वेशवाज पहनकर माथै पर बिंदी नही लगाती थी। इसी तरह अब लहंगा–ब्लाऊज या साड़ी पहनकर नृत्यांगनाये गजल, की प्रस्तुति भी करती है। एक तरह से कहां जाए तो वेषभूषा जिसका निर्धारण दोनों घरानों के संबंधो के लिये चिन्हाकिंत था वह अब धीरे–धीरे समाप्त होने लगा है। प्रयोग और नवाचार की बयार ने इसे अधिक सहज और सुलभ बना दिया।

छत्तीसगढ़ अंचल के कत्थक कलाकार स्थानीय कोसे एवं कारन से निर्मित वस्त्र पहनते है जब कि दिल्ली के कलाकारों में प्राचीन एवं आधुनिक दोनों तरह की वेषभूषा दिखती है। उदाहरणार्य– लहंगा–चोली, लंबा घेरदार फ्राक, चूढ़ीदार और बिना दुपट्टा के लहंगा–ब्लाऊज आदि।

कार्यक्रम के आयोजन के कारणों में भी कत्थक नृत्य की वेषभूषा को प्रभावित किया है। साथ ही अब फ्राक, चूढ़ीदार, कुर्ता एवं जींसनुमा कपड़ों में भी कत्थक नृत्य का प्रदर्शन करने में नृत्यकार गुरेज नहीं, करते है। ये वस्त्र सुविधाजनक होने के साथ–साथ चलन में होने के कारण आकर्षक लगते है। कत्थक नृत्य में वेषभूषा का निश्चित विद्याहीन होने के कारण कलाकारों में इसका कोई निश्चित मापदंड नहीं है। हर कलाकार वस्त्रों के चुनाव में स्वतंत्र है। कभी यह चयन अवसर के अनुकूल होता है तो कभी सुविधा के दृष्टांत। वस्त्रों के चयन में कार्यक्रम का विषय भी महत्वपूर्ण हो जाता है। महापुरूषो की जयंती सम–सामायिक घटना या किसी नृत्य में वेषभूषा का चयन नृत्यकार की समझ पर निर्भर करता है। वेषभूषा में परिवर्तन या वस्त्रों का कलाकारों के अनुसार चयन महत्वपूर्ण भी हो जाता है जो नृत्य की गंभीरता और प्रदर्शन के परिवेश में सांमजस्य स्थापित कर सकें। उदाहरणार्थ :– यदि अंतराष्ट्रीय पर्यावरण दिवस पर नृत्य प्रदर्शन करना हो तो नायिका परंपरागत

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

लहंगा–ब्लाऊज या पेशवाज में नवीन प्रयोग करते हुए हरे रंग को प्रधानता देती है। दोनों यह विषय की गंभीरता को प्रदर्शित करता हैं वस्त्रों के चयन विषयवस्तु की प्रस्तुति में सहायक हो यह आवश्यक है।

आहार्य निधान का भी स्वरूप कत्थक नृत्य में निश्चित नहीं है इस कारण आहार्य के रूप में भी कुछ परिवर्तन हुए है।

प्रस्तुति के संदर्भ में परिवर्तन का क्रम निरंतर प्रवाहमान है। अब नृत्यकार परपंरागत रूप से कत्थक प्रस्तुत करने की अपेक्षा आयोजन की विशिष्टता और उसके महत्व को ध्यान में रखत है।

यदि मैथिलीशरण गुप्त की जयंती या उनसे संबंधित कार्यक्रम का आयोजन किया गया है तो उनके काव्यों पर भाव एवं तोड़े–टुकड़ो का संयोजन कर नृत्यकार प्रदर्शित करती है। यद्यपि हर कलाकार ऐसा नही करते है परंतु यह स्थिति अधिकांश स्थानों में दिखती है।

इन कारणों से भी कत्थक नृत्य की परंपरागत प्रस्तुति क्रम में परिवर्तन हुआ है। कलाकार वस्तु–चक्र के अनुसार भी नृत्य प्रदर्शित करते है। यथा – पावस प्रसंग, बंसतोत्सव आदि। इन ऋतुओं को प्रदर्शित करने वाले परन, गतिनिकास, गतभाव, ठुमरी, दादरा, गजल आदि की प्रस्तुति में ऋतु से संबंधित भाव नृत्यकार प्रदर्शित करते है। जिससे ऋतु का संपूर्ण दृश्य उपस्थित हो सके।

नवाचार और प्रयोग की बयार ने कत्थक नृत्य को कई रूपों में प्रदर्शित किया है, और आगे भी परिवर्तन की लहर जारी है और रहेगी। देखना है तो केवल इतना कि इसका परपंरागत स्वरूप कब तक संरक्षित और सुरक्षित रहता है या फिर नवाचार और प्रयोग इसे नवीन रूप से सृजिव कर सकारात्मक परिणाम दे सकता है।